□□□□□ □□□□□

जनसत्ता 29 मई, 2014 : नरेंद्र मोदी ने अपनी इस जीत को ऐतिहासिक बताया है। उनका कहना है कि राजग की सरकार तो पहले भी बनी, लेकिन अपने बलबूते भाजपा की सरकार देश में पहली बार बनी है। लोकसभा चुनाव में अपनी इस ऐतिहासिक जीत को दर्ज करने के बाद उन्होंने वडोदरा की सभा में कहा कि अब तक इस देश में अपने बलबूते कांग्रेस ही सरकार बनाती आई थी। पहली बार भाजपा ने वह काम किया है। भाजपा की इस जीत को हम भी ऐतिहासिक ही मानते हैं। यहां से भारतीय राजनीति का □ नया दौर शुरू होने जा रहा है। लेकिन क्या हर बदलाव, हर □ नया दौर हमें प्रगति की दिशा में ही ले जाता है? हम इसकी कामना करते है, लेकिन फिलहाल तो इस ऐतिहासिक जीत के निहितार्थ खतरनाक नजर आ रहे हैं।

भारी बहुमत से कांग्रेस भी जीतती रही है। इंदिरा गांधी की हत्या के बाद राजीव गांधी इससे बड़ी जीत, 414 सीटें लेकर आए थे। वे इस देश का कितना भला कर सके, इसको लेकर दलगत प्रतिक्रियाएं हैं। कांग्रेस उसे सराहेगी, भाजपा उसे नकारेगी, इसलिए हम इस विवाद में नहीं जाएंगे। विकास के □ जेंडे को लेकर देश में सही अर्थों में चुनाव हुए ही नहीं। हम भावनात्मक मुद्दों पर, जातिगत समीकरणों के आधार पर चुनाव लड़ने और जीतने-हारने के लिए अभिशप्त हैं, क्योंकि हमारी जन चेतना जाति-व्यवस्था के कारण विखंडित है। इस लिहाज से यह चुनाव भी अलग नहीं। फर्क यह है कि कांग्रेस के विशाल बहुमत से सत्ता में आने पर भी बहुत खुश न होने के बावजूद हम आतंकित नहीं होते थे। भाजपा की इस जीत से हम आतंकित हैं। समाज का □ कब□ा तबका आतंकित है। क्यों?

क्योंकि कांग्रेस भले ही अन्य राजनीतिक दलों की तरह किसी □ क वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करती हो, लेकिन संसद में सभी तबकों का प्रतिनिधित्व लेकर आती थी। उसमें अल्पसंख्यक भी होते थे, दलित भी, हिंदीभाषी भी होते थे और गैर-हिंदीभाषी भी। लेकिन गौर से देखिए, भाजपा की इस जीत को□ कुछ अपवादों को छोड़ यह हिंदी पट्टी की जीत है। □ क सांस्कृतिक क्षेत्र की जीत है। भाजपा अपने पुराने गढ़ों के अलावा सिर्फ उत्तर प्रदेश और बिहार में प्राप्त सौ सीटों की बदौलत इस विशाल जीत पर पहुंच गई। राजस्थान और गुजरात की सारी सीटें जीत कर इस मुकाम पर पहुंच गई। उनकी जीत में बंगाल नहीं, ओ□िशा नहीं। मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नगालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम नहीं। दक्षिण में भी कर्नाटक को छोड़ वह कहीं नहीं। तेलंगाना में नहीं। आंध्र में भी नाममात्र की। वह मूलत: हिंदीपट्टी में है।

कहा जा सकता है कि यह मोदी लहर थी। और जब लहर चलती है तो ऐसा होता है। लेकिन यह लहर क्या सिर्फ देश के मध्य भू-भाग में रही? फिर यह भी गौरतलब है कि भाजपा 2004 के इंडिया शाइनिंग की विफलता को छोड़, आपातकाल के बाद, लगातार बढ़ती रही है। राम मंदिर आंदोलन के बाद उसकी सीटों में क्रमिक रूप से इजाफा होता रहा है। 1989 के चुनाव में वह पचासी सीटों पर थी। 1991 में □ क सौ बीस सीटों पर, 1996 में □ क सौ इक्सठ सीटों पर। 1998 और 99 में वह □ क सौ बयासी सीटों पर रही।

लेकिन कांग्रेस के दस वर्षों के शासन की विफलता ने उसे इस विशाल बहुमत पर पहुंचा दिया। वैसे उसने बढ़ना तो शुरू कर दिया था आडवाणी की रथयात्रा के साथ ही। और गुजरात दंगों की पृष्ठभूमि से उभरे विवादित नायक ने इस 'यात्रा' को 'लहर' में बदल दिया। लेकिन यह लहर सक्रिय रही □ क विशेष सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई पृष्ठभूमि वाले भू-भाग में। तथाकथित लहर की बड़ी हकीकत यह भी है कि पहली बार सिर्फ इकत्तीस फीसद वोट लेकर कोई राजनीतिक दल बहुमत पर पहुंचा है। पिछली सबसे कम मत-प्रतिशत वाली जीत थी 1967 में कांग्रेस की, जब वह 520 में से 283 सीटें लेकर सत्ता के शीर्ष पर पहुंची थी और तब उसे 40.8 फीसद वोट मिले थे। इस तथ्य की व्याख्या हम इस रूप में कर सकते हैं कि हिंदीपट्टी के बाहर भाजपा का मत-प्रतिशत कम रहा है।

यह लहर थी हिंदुत्ववादी धारा की, जिसने उत्तर प्रदेश में भारी उलट-फेर कर डाला। किसी जमाने में ऐसी ही लहर से आक्रांत होकर जिन्ना देश के विभाजन के लिए अड़ गए थे। उन्हें लगता था कि बहुसंख्यक हिंदू आबादी वाले इस देश में मुसलमान कभी चुनाव जीत ही नहीं सकेंगे। दरअसल, 1935 के विधानसभा चुनावों में उत्तर प्रदेश सहित मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में भी मुस्लिम लीग की पराजय हुई। जिन्ना का आग्रह था कि कांग्रेस मुसलमानों का प्रतिनिधि मुस्लिम लीग को मान कर वे सीटें उन्हें दे दे। कांग्रेस यह कैसे स्वीकार कर सकती थी? वह मुस्लिम लीग को मुसलमानों का प्रतिनिधि कैसे मान सकती थी? इसका अर्थ तो यह होता कि कांग्रेस सिर्फ हिंदुओं की पार्टी है। नेहरू ने इस बात से इनकार कर दिया और तब घटी इतिहास की सबसे बड़ी त्रासदी। जिन्ना अड़ गए कि उन्हें पाकिस्तान चाहिए। और आजादी के चंद दिनों पहले उन्होंने 'डाइरेक्ट एक्शन' का ऐलान कर दिया।

बहुसंख्यक आबादी के दबाव से दलित भी आक्रांत थे। उन्हें भी लगता था कि वर्ण व्यवस्था से पीड़ित दलित कभी जनप्रतिनिधि नहीं बन सकेंगे, क्योंकि लोकतंत्र में जीत-हार का निर्णय बहुमत से होता है। आंबेडकर इन्हीं परिस्थितियों में अंग्रेजों के उस प्रस्ताव के समर्थक बन गए जिसमें कम्युनल अवार्ड के तहत दलितों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र का प्रस्ताव था। लेकिन गांधी इस बात के लिए बिल्कुल सहमत नहीं थे। उन्होंने आमरण अनशन किया और अंततोगत्वा 24 सितंबर 1932 को वह महत्त्वपूर्ण समझौता हुआ जिसे पूना पैक्ट के नाम से हम जानते हैं। इस समझौते से आंबेडकर प्रसन्न थे क्योंकि इससे गांधीजी की प्राण-रक्षा भी हुई और दलितों की सभी मांगें मान ली गईं, छुआछूत को अपराध मानने और दलितों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई। आजादी के बाद इस बारे में संविधान में प्रावधान किए गए।

लेकिन इस व्यवस्था का पेच यह है कि सीटों के आरक्षण से यह तो सुनिश्चित हो जाता है कि दलित प्रतिनिधि भी विधानसभा और संसद में पहुंच सकेंगे, लेकिन दलितों का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टी का उम्मीदवार ही जीते, यह जरूरी नहीं। आदिवासियों के लिए भी सीटों को आरक्षित किया गया है। लेकिन छत्तीसगढ़ जैसे राज्य में आदिवासियों की अपनी कोई सशक्त पार्टी ही नहीं। उनके वोटों का इस्तेमाल भाजपा और कांग्रेस करती हैं, जो उनके आर्थिक हितों के खिलाफ हैं। झारखंड में कई झारखंडी पार्टियां हैं जिनमें सबसे मजबूत है झामुमो। लेकिन उसे भी अपनी जीत के लिए कांग्रेस या भाजपा का मुखापेक्षी होना पड़ता है।

बावजूद इसके, शुरुआती दौर में यह व्यवस्था कारगर रही, इसलिए कि तब कांग्रेस ही प्रमुख राजनीतिक शक्ति थी और विभाजन की पीड़ा को झेल चुके देश का जनमत सांप्रदायिकता या उग्र हिंदुत्ववादी भावनाओं के खिलाफ था। इसलिए भाजपा या उसके पूर्व रूप जनसंघ को तब कभी भी चुनाव में सफलता हासिल नहीं हो सकी। लेकिन संघ परिवार की पूरी राजनीति ही इस उम्मीद पर कायम थी कि कभी न कभी सांप्रदायिकता के आधार पर राजनीतिक ध्रुवीकरण करने में वे कामयाब होंगे, और तब इस देश में हिंदुओं की सत्ता कायम होगी। और राम रथ यात्रा, बाबरी मस्जिद का ध्वंस, गुजरात सहित देश में होने वाले सांप्रदायिक दंगों की बदौलत वह क्रमिक रूप से बढ़ते-बढ़ते इस मुकाम पर आखिरकार पहुंच गई है। जाहिर है, कट्टर हिंदुत्व की भावना धीरे-धीरे फैल रही है।

हिंदुत्व की इस भावना के सामने कुछ समय के लिए अवरोध खड़ा किया पिछड़ा राजनीति ने भी। समाजवादियों के नारे 'सौ में नब्बे हम, राज तुम्हारा नहीं चलेगा' ने भी हिंदुत्ववादी लहर को नियंत्रित करने में भूमिका निभाई। दलित, अल्पसंख्यक और पिछड़ा वोटों के गठजोड़ से सवर्ण राजनीति का पराभव हुआ। लेकिन इसी जातिवादी राजनीति के उभार ने 'सौ में नब्बे हम' वाले नारे को कमजोर भी किया। जातिगत वोट बैंक के आधार पर नेता पैदा हुए और सत्ता की दमित इच्छा ने उन्हें तरह-तरह के गठजोड़ के लिए प्रेरित किया। अगड़ी जातियों और सवर्ण मानसिकता ने इसका भरपूर फायदा उठाया।

मुलायम सिंह को पराजित करने के लिए सवर्णों ने मायावती का इस्तेमाल किया। बिहार के अगड़ों ने छाती पर मूंग दल रहे लालू को सत्ता से हटाने के लिए नीतीश को हथियार बनाया। इन प्रयोगों और सत्ता की दमित लालसा ने पिछड़ा, दलित और अल्पसंख्यक राजनीति की एकजुटता को विखंडित कर दिया है। फिर, इस विखंडित राजनीति के बीच जब 2014 का यह चुनाव परिणाम आया है, तो सब ठगे-से खड़े हैं।

सवाल यह है कि जब सांप्रदायिक आधार पर राजनीति का ध्रुवीकरण हो रहा हो और भाजपा के मुकाबले उत्तर प्रदेश में मुलायम, मायावती, कांग्रेस आदि खड़े हों तो जीतेगा कौन? बिहार में एक तरफ भाजपा और दूसरी तरफ अलग-अलग लालू और नीतीश तो जीत की उम्मीद ही कैसे कर रहे थे? इसलिए मायावती अपने दलित वोट को एकजुट रख कर भी एक सीट नहीं जीत सकीं। मुलायम की साइकिल चार सीटों पर ठहर गई। अब यह कहना तो कठिन है कि किसका वोट किधर गया, लेकिन हालत यह है कि दलित नेता रामविलास पासवान और उदित राज, उग्र यादव नेता रामकृपाल यादव भाजपा की शरण में पहुंच कर चुनाव जीत जाते हैं और शाहनवाज हुसैन भाजपा के टिकट पर मुसलिम बहुल भागलपुर सीट से चुनाव हार जाते हैं। मोदी लहर उनके काम नहीं आती।

तो क्या माना जाए कि भाजपा की नीतियां बदल गई हैं? हिंदुत्व, राम मंदिर, और कश्मीर के बारे में वह पहले से सहिष्णु हो गई है? इसलिए रामविलास, उदित राज और रामकृपाल भाजपा में गए? नहीं। उन्होंने हिंदुत्ववादी राजनीति के उभार के सामने समर्पण कर दिया। इसलिए बच गए। और जिन्होंने यह समर्पण नहीं किया, हार गए। मायावती बड़ी संख्या में ब्राह्मणों और मुसलमानों को टिकट देकर भी उन्हें अपनी तरफ नहीं खींच सकीं। क्योंकि राजनीति विभाजित थी सांप्रदायिकता के आधार पर। उसमें मायावती कामयाब नहीं हो पाईं।

अब मोदी भले ही चाय बेचने वाले आर्थिक आधार या पिछड़े समुदाय से ही आते हों, वे उस हिंदुत्ववादी लहर पर सवार होकर सत्ता की राजनीति के शीर्ष पर पहुंचे हैं जिसके नियामक सवर्ण हिंदू हैं। यहां आकर आरक्षण से मिली सुरक्षा बेमतलब होकर रह जाती है। क्योंकि दलित संसद में पहुंचेंगे, लेकिन भगवा रंग से रंगे होंगे। आदिवासी पहुंचेंगे तो वे उन नीतियों का समर्थन करते दिखेंगे जिनसे विस्थापन का दंश पैदा होता है। और, राजनीति के इस उभार को मुसलिम वोटों की जरूरत ही नहीं।

इस लिहाज से देखें तो जिन्ना की दृष्टि आंबेडकर से ज्यादा पैनी नजर आती है। वे लोकतांत्रिक ढांचे में बहुसंख्यक हिंदू आबादी के बरक्स मुसलमानों के भविष्य को देख रहे थे। यह देश की अखंडता के लिए खतरनाक है। त्रासद यह है कि मोदी के समर्थक इस खतरे को नहीं देख रहे। वे उलटे पाकिस्तान भेजने की बात कह रहे हैं कि जो हमारे विरोधी हैं वे पाकिस्तान चले जाएं। लेकिन दलित कहां जाएंगे? और वैसे हिंदू, जो संघ के हिंदुत्व और राष्ट्रवाद के हिमायती नहीं?

फेसबुक पेज को लाइक करने के लिए क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लिए क्लिक करें- https://twitter.com/Jansatta